प्दजमतदंजपवदंस श्रवनतदंस व ित्मेमंतबी
ैचमबपंस प्ेेनम वित न्छ६ ।चचतवअमक श्रवनतदंस.ॅपदकप च्ंमते
।अंपसंइसम ंज ीजजचेरूध्ध्मकनचमकपंचनइसपबंजपवदेण्वतहध्रवनतदंसे
म.प्ैैछरू 2348.6848
च.प्ैैछरू 2348.795ग
टवसनउम 05 प्ेेनम 02
श्रंदनंतल 2018

वैदिक यज्ञों के प्रति गीता की दृष्टि

डॉ० सरोज बाला
सहायक प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
भगतफूल सिंह महिला विश्वविद्यालय
क्षेत्रीय केन्द्र, खरल (जींद)

गीता का चौथा अध्याय है – ज्ञान–कर्म–संन्यास योग अर्थात् फल की आसक्ति से मुक्त होकर यज्ञ की तरह कर्म करने का ज्ञान। गीता यज्ञ की वैदिक अवधारणा को भी रूढ़ि के रूप में स्वीकार नहीं करती। वेद के दो विभाग है – मंत्र और ब्राह्मण। देवता विशेष की स्तुति में प्रयुक्त होने वाले अर्थ–स्मारक वाक्य को मंत्र कहते है तथा यज्ञानुष्ठान का विस्तारपूर्वक वर्णन करने वाले ग्रन्थ ब्राह्मण कहलाते है। मंत्रों के समुदाय को संहिता कहते हैं। ये संहिताएँ चार है – ऋक्, यजुः साम अथर्व।[1]

भगवद्गीता वैदिक युग की यज्ञ–संस्कृति से भलीभाँति परिचित है गीता के अनुसार श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण लोक या जन–साधारण के लिए आदर्श होता है। श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा जो प्रमाणित कर दिया गया है उसे ही प्रमाण मानकर लोक अनुवर्तन करता है[2] –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त देवेतरो जनः
स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।

यह श्रेष्ठवर्ग पुरोहित एवं राजाओं का वर्ग है जिनके हाथ में परलोक और इहलोक का ज्ञान और शक्ति एकत्रित हो गई थी। इसी वर्ग के द्वारा वेदोक्त यज्ञों की संभावना भी थी। समाज में दर्शन, धर्म, नीति, आचरण तथा आदर्श के प्रवक्ता इसी वर्ग में से निकलते थे। जन–साधारण या 'लोक' इसे ही प्रमाण मानकर अनुकरण करने का प्रयास करता था। पुरोहित एवं राजा लोग बिना उत्पादन किये जन–साधारण द्वारा उत्पादित सामग्री का उपभोग करते थे। एक तरह से 'श्रेष्ठ वर्ग एवं लोक' में खाई हो गई थी।

भगवद्गीता की क्रान्ति–दृष्टि के दर्शन इस तथ्य में होते है कि श्रेष्ठ एवं लोक के भेद को रेखांकित करने वाला यह प्रमुख ग्रन्थ है अर्जुन राज–परिवार का सदस्य होने के बावजूद जन–साधारण का प्रतिनिधि है तथा उसे जन–जीवन का पूरी तरह अनुभव हो चुका है। इसका प्रमाण है – गीता की यज्ञ के प्रति दृष्टि।[3]

गीता के अनुसार यज्ञ का अर्थ हवन तक सीमित नहीं है। अहंकार विहीन होकर अकर्ता बनकर निःस्वार्थ भाव से किया गया परोपकारी कर्म यज्ञ बन जाता है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।

ब्रह्मेव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।

यह एक भावना है। यज्ञ में ब्रह्म को अर्पित की जाने वाली वस्तु ही ब्रह्म है अर्पण करता भी ब्रह्म है और जिसके लिए सभी कर्म ब्रह्ममय है, उसे प्राप्य फल भी ब्रह्म है।[4]

गीता यज्ञ की मूल भावना लेकर उसे इतना व्यापक रूप प्रदान कर देती है कि वह सर्वजनसुलभ हो जाता है। यज्ञ के कर्मकांडीय स्वरूप को छोड़कर उसमें निहित उत्सर्ग एवं त्यागपूर्ण आचरण पर बल देती है। अनासक्त होकर यज्ञ के लिए आचरण करना अर्थात् समर्पण करना वास्तविक यज्ञ है।[5]

गीता के चतुर्थ अध्याय में श्लोक 24 से 33 तक यज्ञ के विविध रूपों की चर्चा की गई है। कुछ योगी देवताओं को लक्ष्य में रखकर यज्ञ करते हैं। कोई अन्य योगी ब्रह्माग्नि में यज्ञ द्वारा ही यज्ञ करते हैं।[6] कुछ लोग श्रोज आदि इन्द्रियों का संयम रूपी अग्नि में होम करते हैं। दूसरे इन्द्रियरूपी अग्नि में शब्द आदि विषयों का हवन करते हैं।[7] वाक्यज्ञ में स्वाध्याय और ज्ञानयज्ञ शामिल हैं शिष्य (या स्वतः स्वाध्यायी) अग्नि है जिसमें ज्ञान की आहुति दी जाती है। प्राणयज्ञ में अपान–अग्नि प्राण की हवि या प्राण में अपान की हवि दी जाती है। कर्मयज्ञ में तप, योग साधना, सभी सम्मिलित हैं। ब्रह्मयज्ञ या आत्मयज्ञ में यज्ञमान, देवता, अग्नि, हवि, साधन सभी ब्रह्म या आत्मा हैं। यज्ञो का फल पापनिवृत्ति, चित्तशुद्धि तथा ब्रह्मानुभूति है। इस दृष्टि से सारा जीवन यज्ञमय हो जाता है। यज्ञ–विशेषज्ञों की उपस्थिति के बिना भी प्रतिफल यज्ञ संपादित

होता रहता है। व्यक्ति का वर्ण, जाति, आर्थिक व राजनैतिक स्थिति यज्ञ में किसी तरह की बाधा नहीं दे सकते। इस तरह गीता ने एक ओर तो वैदिक परम्परा और पुरोहितों के चंगुल से मुक्ति दिलाई तथा दूसरी और जनसाधारण को हीन–भावना से उबारकर व्यक्तित्व प्रदान किया। गीता का मत है कि यज्ञ मनुष्य को पवित्र करने वाला है – यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।

यहाँ यज्ञ से तात्पर्य विसर्ग या उत्सर्ग या त्याग है न कि केवल अग्नि में मूल्यवान सामग्री तथा पशु की बलि देना। बड़े ही स्पष्ट शब्दों में गीता ने कहा है कि द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है –

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञान यज्ञः परंतप।[8]

गीता का यह कथन सत्य है कि परम्परा से प्राप्त योग बहुत काल से नष्ट हो गया था –

एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः

स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।।[9]

प्रत्येक अनुपयोगी वस्तु और विचार काल–कवलित हो जाते हैं। संसार भर के अजायबघर एवं इतिहास की पुस्तकें इस बात के साक्षी हैं। गीता ने इस पुरातन यज्ञ प्रणाली को बिल्कुल नये और व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। कर्मयोग गीता की मौलिक देन है। इसलिए चतुर्थ अध्याय और महत्त्वपूर्ण बन गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि गीता पुरातनवादी या परम्परावादी ग्रन्थ नहीं है गीता ने 'लोक' या जन–साधारण की स्थिति को पहचान कर उसके हित में विचार एवं आचार प्रस्तुत किए है प्रत्येक साहित्यिक या दार्शनिक कृति अपने युग का प्रतिबिम्ब होती है युगानुकूल सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा वैचारिक स्थितियों का लेखा–जोखा उस ग्रन्थ में रहता है लेकिन जिस ग्रन्थ में लोक या जनसाधारण की पीड़ा को समझकर लेखक उसका वर्णन करता है तथा मुक्ति के मार्ग सुझाता है। यह ग्रन्थ इतिहास नहीं बनता इतिहास बनाने में सक्रिय सहयोग देता है गीता अद्भुत ग्रन्थ

है इसलिए नहीं की उसकी गणना प्रस्थान त्रयी में की जाती है या उसे भगवान का गीत माना जाता है। इसलिए भी नहीं की उसके भाष्यकार शंकर, रामानुज, माधव, अभिनव गुप्त प्रकांड दार्शनिक या विनोभा सरीखे आदर्श पुरुष रहे है वरन् इसलिए कि वह अभी भी जन–साधारण को जीने की प्रेरणा देता है अब तो इस ग्रन्थ का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व हो गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

[1] श्रीमद्भगवद्गीता का जीवन–दर्शन, पृ० 106
[2] श्रीमद्भगवद्गीता का जीवन–दर्शन, पृ० 107
[3] श्रीमद्भगवद्गीता का जीवन–दर्शन, पृ० 107
[4] श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय–4, श्लोक 24
[5] श्रीमद्भगवद्गीता, 4/23
[6] श्रीमद्भगवद्गीता, 4/24
दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।।
[7] श्रीमद्भगवद्गीता, 4/26
श्रोत्रादिनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयान्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।।
[8] श्रीमद्भगवद्गीता – 4/33
[9] श्रीमद्भगवद्गीता – 4/2